Volume-11, No. 1 Feb.-2024, pp. Hin.04-06

रामचरित मानस में भारतीय ज्ञान परम्परा का महत्व व प्रासंगिकता

डॉ0 गिरीश कुमार वत्स, प्राचार्य
श्री द्रोणाचार्य स्नातकोत्तर महाविद्यालय दनकौर (गौतम बुद्ध नगर)
उत्तर–प्रदेश, भारत।

ज्ञान का जीवन में विशेष महत्व है। ज्ञान से ही व्यक्ति सत्य–असत्य का तथा कर्तव्य–अकर्तव्य का बोध होता है। ज्ञान के अभाव में मनुष्य पशु समान है। आज संसार में अनेक प्रकार के ज्ञान के कारण मानव जीवन अनेक प्रकार की सुख सुविधाओं से पूर्ण है। प्रत्येक प्रकार के कार्य का आधार तत्सम्बन्धी ज्ञान है। भारतीय ज्ञान के विषय में गीता में इस प्रकार कहा गया है–
श्रेष्ठता के अभिमान का अभाव, दम्भाचरण का अभाव, प्राणि मात्र को किसी प्रकार भी न सताना, क्षमाभाव, श्रद्धा भक्ति सहित गुरु की सेवा, शौच, स्थिरता तथा मन और इन्द्रियों का निग्रह सम्पूर्ण भोगों में आसक्ति का अनाशक्ति का अभाव, जन्म, मृत्यु, जरा, रोग आदि में दुख दोषों का बार–बार विचार करना। अनासक्ति, ममता का अभाव तथा इष्ट और अनिष्ट की प्राप्ति में सदा समचित रहना। मुझे परमेश्वर में एकी भाव से स्थिति रूप ध्यान योग के द्वारा अव्यभिचारिणी भक्ति, एकान्त और शुद्ध देश में रहने का स्वभाव और विषयासक्त मनुष्यों के समुदाय में प्रेम का न होना। अध्यात्म ज्ञान में नित्यस्थिति तथा तत्व ज्ञान के अर्थ रूप परमात्मा को सर्वत्र देखना–यह सब ज्ञान है तथा जो इसके विपरीत है वह अज्ञान है। तुलसी के मतानुसार ज्ञान का पंथ कृपाण की धार के सहश है, इस मार्ग पर से गिरते देर नहीं लगती–

मुख्य शब्द– भारतीय ज्ञान, सा विद्या या विमुक्ते

''ज्ञान पंथ कृपान कै धारा।
परत खगेस होइ नहि बारा।''

ज्ञान का मार्ग अनेक विघ्नों से पूर्ण होने के कारण अत्यधिक कठिन है। उसका साधन भी सरल नहीं है तथा उसमें मन के लिए कोई आधार नहीं है–

''ज्ञान अगम प्रत्यूह अनेका।
साधन कठिन न मन कहुँ टेका।।''

ज्ञान के प्रति अरूचि के विषय में तुलसी कहते हैं कि इन्द्रियों के देवताओं को ज्ञान अच्छा नहीं लगता है। क्योंकि विषय–भोग पर उनकी निरन्तर आसक्ति रहती है–

''इन्द्रिह सुरन्ह न ज्ञान सौहाई।
विषय भोग पर प्रीति सदाई।।''

ज्ञान का विषय कहने समझने और साधने में कठिन है। यदि घुणाक्षर न्याय से (संयोग–वंश) यह ज्ञान प्राप्त भी हो जाये तो उसे बचाए रखने में अनेक विघ्न आ खड़े होते हैं–

कहत कठिन समुझत कठिन साधन कठिन विवेक।
होइ घुनाक्षर न्याय जो पुनि प्रत्यूह अनेक।।

ज्ञान हो जाने पर मनुष्य सब प्रकार के बाह्य आडम्बर को त्याग देता है। उसमें अहंकार का भाव समाप्त हो जाता है। वह सभी प्राणियों के प्रति दयाभाव धारण करता हुआ सब में ब्रहा को समान भाव से देखता है। तुलसी इस तथ्य का प्रतिपादन इस प्रकार करते हैं–

''ज्ञान मान जहं एकौ नाहीं।
देख ब्रहा समान सब माहीं।।''

तुलसी राम प्रेम के अभाव में ज्ञान तथा योग को निरर्थक मानते हैं। बिना राम प्रेम के ज्ञान उसी प्रकार शोभा नहीं पाता है जिस प्रकार कर्णधार के बिना जहाज–

''जोगु कुजोगु ग्यान अग्यानू, जहं नहि रामप्रेम पर धानू।
सोहन रामप्रेम बिन ग्यानू, करन धार बिन जिमि जलजानू।।''

समाज में संत–असंत, सत–असत प्रवृत्ति के द्योतक है। सुमति–कुमति की भांति संतत्व और असंतत्व प्रत्येक हृदय में विराजमान रहता है। जहाँ संतत्व की प्रधानता है वहाँ सच्ची समृद्धि है तथा जहाँ असंतत्व की प्रधानता है वहाँ विपित्ति है–

सुमति कुमति सबके उर रहहीं।
नाथ पुरान निंगम उस कहहीं।
जहाँ सुमित तहं संपति नाना।
जहाँ कुमति तहं विपति निदाना।।

संत एवं असंत के आचरण एक–दूसरे के सर्वथा विपरीत है। तुलसीदास ने इनके आचरण को चन्दन और कुल्हाड़ी के आचरण सदृश बताया है। जो कुल्हाड़ी चन्दन को काटती है, वही चन्दन अपने श्रेष्ठ स्वभाव के कारण उसे सुगंधित कर देता है। चन्दन इसी गुण के कारण देवताओं के सिर पर चढ़ाया जाता है तथा सम्मान पाता है। कुल्हाड़ी की अन्त में यह गति बनती है कि उसे अग्नि में तपा कर घनों से पीटा जाता है–

संत असंतन्हिकै असि करनी।
जिमि कुढार चंदन आचरनी।।
काटै परसु मलय सुनु माई।
निज गुन देई सुगंध बसाई।।
ता ते सुर सीसन्ह चढ़त जग बल्लभ श्रीखण्ड।
अनल दहि पीटत घनन्हि परसु बदनु रोह दंड।।

रामचरित मानस में तुलसी के ज्ञान के विषय में संतो के गुण, स्वभाव तथा आचरण का वर्णन किया है। संतों के महनीय गुणों की ओर कवि की सूक्ष्म दृष्टि जीवन के विविध पक्षों पर प्रकाश डालती है। इन गुणों की ओर संकेत करने का उद्देश्य यह है कि इन गुणों को एवं ज्ञान को जीवन में अपनाया जाए।

ज्ञान एवं विवेक से परिपूर्ण संतों का हृदय सब प्रकार के विषय–विकारों से रहित होता है। हृदय की इस निर्मलता के कारण वे किसी प्रकार के व्यसन का शिकार नहीं होते। वर्षा ऋतु के बीत जाने पर सर्दी की ऋतु का सौंदर्य वर्णन करते हुए राम, लक्ष्मण से सन्त के हृदय की निर्मलता के विषय में कहते हैं कि नदियों और सरोवरों का निर्मल जल ऐसा अच्छा लग रहा है जैसे संतों व ज्ञानी का निर्मल हृदय मद तथा मोद से रहित शोभा देता है–

''सरिता सर निर्मल जल सोहा।
संत हृदय जस गत मद मोहा।।''

ज्ञानी एवं विवेकी एवं सज्जन दूसरों की उन्नति को देखकर प्रसन्न होते हैं। वे दूसरों की सम्पत्ति को देखकर हर्षित होते हैं तथा दूसरों की विपत्ति देखकर दुःखी होते हैं–

''जे हरषहि परसंपत्ति देखी।
दुखित होहि पर विपति बिसेषी।।

तुलसी का जन्म ऐसे समय में हुआ था जब भारत वर्ष की ज्ञान परम्परा व धार्मिक परिस्थिति अनेक प्रभावों से प्रभावित थी। उस समय अनेक धर्म–सम्प्रदाय विद्यमान थे। शैव, शाक्व, पुष्टि मार्ग, रामभक्त, गोरख पंथी, सूफी, संत, आदि में प्रति स्पर्धा थी। सब एक–दूसरे को हेय सिद्ध करने में तत्पर थे। इस समय नाना प्रकार के मत–मतान्तरों से व्यक्ति भ्रमित हो उठे थे। उन्हें कोई मार्ग सूझ नहीं पड़ रहा था उस समय भारतीय, भारतीय ज्ञान परम्परा को तुलसी ने अपने प्रमाणित ग्रन्थ के साथ ही तुलसी ने भ्रमित व्यक्तियों से श्रुति–सम्भव हरिभक्ति पथ पर चलने के लिए आग्रह किया। तुलसी के अनुसार धर्म का मूल है–दया और पाप का मूल है–अभिमान।

मानस का धर्म लिंग, वर्ण, जाति, आदि के भेद–भाव से मुक्त है तथा सभी के लिए समान रूप से व्यवहारणीय है। तुलसी की दृष्टि में अहिंसा, क्षमा, घृति, दया, अस्तेय, शौच, इन्हिय–निगह, घी–विद्या, सत्य, अक्रोध, दान तथा मन को वश में रखना धर्म के मूल लक्ष्य भारतीय ज्ञान परम्परा के अनुसार बताने का प्रयास किया गया है।

तुलसीदास का जन्म मुस्लिम कालीन, मध्यकालीन शासनकाल में हुआ था। उस समय राष्ट्र विदेशी विजेताओं से पदाक्रान्त था तथा हिन्दू–मुस्लिम का संघर्ष चल रहा था। तुलसीदास जी ने अपने भारतीय ज्ञान की ततकलीन राजनीतिक परिस्थिति का तो दिग्दर्शन कराया ही है परन्तु उससे भी अधिक उनका लक्ष्य राजनीतिक आदर्श की प्रतिष्ठा करना रहा है। रामराज्य एक आदर्श राज्य था, जिसमें प्रजा सब प्रकार सन्तुष्ट और सम्पन्न थी। राजा को प्रजा अपने प्राणों से बढ़कर प्रेम करती थी। राम राज्य की उस आदर्श शासन व्यवस्था के विषय में पंडित रामचन्द्र शुक्ल का कथन अत्यधिक महत्वपूर्ण है– ''आर्दश राज्य केवल बाहर कर्मो का प्रतिबंधक और उत्तेजक नहीं है, हृदय को स्पर्श करने वाला है, उसमें लोक रक्षा के अनुकूल भावों की प्रतिष्ठा करने वाला है। उसमें लोकरक्षा के अनुकूल भावों की प्रतिष्ठा करने वाला है। यह धर्मराज्य है– इसका प्रभाव जीवन के छोटे–बड़े सब व्यापारों तक पहुँचने वाला है। इस राज्य की स्थापना केवल शरीर पर ही नहीं होती, हृदय पर भी होती है। यह राज्य केवल चलती हुई जड़ मशीन नहीं है। आदर्श व्यक्ति परिवर्धित रूप है।''

भारतीय ज्ञान परम्परा के अनुसार तुलसी ने धार्मिक शिक्षा के तहत धर्म का मूलाधार शौर्य होता है। वह शौर्य क्षत्रियोचित शूर धर्म का ही घोतक न होकर स्वभाव विजय का भी व्यंजक है। जीव का स्वभाव विषय प्रवृत्ति युक्त है, जिसके

वशीभूत होकर वह पाप–कर्म करता है तथा विविध योनियों में भटकता रहता है। धर्म का दूसरा आधार धैर्य है। धीरज से गोस्वामी जी अभिप्राय सात्विक धृति से है। अधीर चित्त से धर्म का पालन सम्भव नहीं है। सत्य, शील ही धर्म–रथ की दृढ़ ध्वजा है। 'शील' का अर्थ है–सदाचार। आचार परम धर्म है। धर्म पालन के चार आवश्यक अंग है। आत्मबल, विवेक, दया (इन्द्रिय–निग्रह) तथा परहित। इस सम्बन्ध में दया, क्षमता तथा समत्व बुद्धि भी आवश्यक है। ईश्वर का स्मरण, विषयों में अनासक्ति की भावना रखना तथा संतोष–वृत्ति से ही रक्षा सम्भव है। दान और बुद्धि भी शक्ति का विशेष महत्व है। निर्मल और स्थिर मन के अभावों में जीवन में सफलता सम्भव नहीं। यम और नियम की जीवन में अत्यधिक आवश्यकता है। इस प्रकार के धर्म पथ से युक्त व्यक्ति के लिए संसार में कोई शत्रु ऐसा नहीं है जिसे जीता न जा सकें।

शिक्षा के विषय में भारतीय विद्वानों का दृष्टिकोण उनकी द्विजत्व सम्बन्धी धारणा से स्पष्ट हो जाता है। शिक्षा संस्कार द्वारा ही मनुष्य का वास्तविक जन्म किया।

संस्काराद् द्विज उच्यतै

यह द्विजत्व वास्तव में प्रत्येक मनुष्य का धर्म है। शिक्षा द्वारा हृदय और बुद्धि का विकास होने की स्थिति में ही शिक्षित व्यक्ति अन्य मनुष्यों की तुलना में श्रेष्ठ हो जाता है। इसके विपरीत विद्या–विहीन को पशुवत माना गया है।

(क) अर्थकारी सा विछा

(ख) जीवन मूल्यों की शिक्षा

जेविका सम्बन्धी शिक्षा को उपनिषदों में अविधा कहा गया है। वेदों में विद्या को अमृत प्राप्त करने का साधन तथा उपनिषदों में मुक्ति देने वाली कहा गया है–

सा विद्या या विमुक्ते

मुक्ति से तात्पर्य सब प्रकार की दुर्बलताओं से मनुष्य को मुक्त करना तथा मानवीय क्षमताओं का सर्वांगीण विकास। यही सब विद्या के उपयोग में आता है। इस विषय की शिक्षा उस दूसरे प्रकार की शिक्षा से भिन्न है। जो केवल जीविका के लिए अथवा उदर भरने के उद्देश्य से दी जाती है। जीविकोपार्जन तो प्राणी का जैव धर्म है। जब प्राणी जन्म लेता है तो जीवित रहने के लिए वह कुछ न कुछ प्रयास करता है। इससे भिन्न जीवन मूल्यों की शिक्षा होती है।

भारत में वैदिक काल से ही धर्म के अन्तर्गत मूल्य चिंतन होता रहा है। सत्य, अहिंसा तप, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, दया, दान आदि प्राचीन काल से ही मानवीय मूल्यों के रूप में स्वीकृति प्राप्त हुए है। इन्ही को संक्षिप्त रूप में धर्म के दस लक्षण कहा गया है।

धृतिः क्षमा दमो स्तेयं शौचमिन्द्रय निग्रहः।
धीविद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम।।

शिक्षा के सामान्यतया औपचारिक शिक्षा का ही अर्थ लिया जाता है। जिसमें एक निश्चित पाठ्यक्रय, एक निश्चित पाठ्य विधि एक निश्चित परीक्षा प्रणाली तथा सबको समेटने वाली एक निश्चित कालविधि समाहित है। यह गुरुकुलीय अथवा विद्यालयीय शिक्षा प्रणाली अत्यधिक प्राचीनकाल से परम्परा रूप में प्रचलित है। भारतीय जन की विशेषता रही है कि तथारूप उपयोगी शिक्षा के अतिरिक्त उसे जीवन मूल्यों की भी शिक्षा मिलती रही है तथा तथारूप उपयोगी शिक्षा के अतिरिक्त उसे जीवन मूल्यों की भी शिक्षा मिलती रही है।

संदर्भ–

1. संस्कृत–शब्दार्थ–कौस्तुभ–सम्पादक
2. Indian Philosphy
3. रामचरित मानस का काव्यशास्त्रीय अनुशीलन, राजकुमार पाण्डेय
4. तुलसी दर्शन मीमांसा डॉ0 उदय भानु सिंह
5. तुलसी कृत रामचरित मानस
6. रामचरित मानस में शिक्षा दर्शन–डॉ0 दीपचन्द